

मंत्र
मुंशी प्रेमचन्द

मंत्र

मुन्शी प्रेमचन्द





मंत्र

पंडित लीलाधर चौबे की जबान में जादू था। जिस वक्त वह मंच पर खड़े होकर अपनी वाणी की सुधावृष्टि करने लगते थे, श्रोताओ की आत्माएँ तृप्त हो जाती थीं, लोगों पर अनुराग का नशा छा जाता था। चौबेजी के व्याख्यानों में तत्व तो बहुत कम होता था, शब्द योजना भी बहुत सुन्दर न होती थी; लेकिन उनकी शैली इतनी आकर्षक रंजक और मर्मस्पर्शी थी कि एक ही व्याख्यान को बार-बार दुहराने पर भी उसका असर कम न होता, बल्कि घन की चोटों की भाँति और भी प्रभावोत्पादक हो जाता था। विश्वास तो नहीं आता, किन्तु सुनने वाले कहते हैं, उन्होंने केवल एक व्याख्यान रट रखा है, और उसी को वह शब्दशः प्रत्येक सभा में एक नए अन्दाज से दुहराया करते हैं। जातीय गौरव-गान उनके व्याख्यानों का

प्रधान गुण था; मंच पर आते ही भारत के प्राचीन गौरव और पूर्वजों की अमर-कीर्ति का राग छेड़कर वे सभा को मुग्ध कर देते थे। यथा....

"सज्जनों! हमारी अधोगति की कथा सुनकर किसी की आँखों से अश्रुधारा न निकल पड़ेगी? हमें अपने प्राचीन गौरव को याद करके संदेह होने लगता है कि हम वही हैं या बदल गए। जिसने कल सिंह से पंजा लिया, वह आज चूहे को देखकर बिल खोज रहा है! इस पतन की भी कोई सीमा है। दूर क्यों जाइए, महाराज चंद्रगुप्त के समय को ही ले



पंडित लीलाधर जब अपनी वाणी की सुधावृति करने लगते तो श्रोताओं की आत्मा तृप्त हो जाती थीं।

लीजिए। यूनान का सुविज्ञ इतिहासकार लिखता है कि उस जमाने में यहाँ द्वार पर ताले न डाले जाते थे, चोरी कहीं सुनने में न ग्राती थी, व्यभिचार का नाम-निशान न था, दस्तावेजों का ग्राविष्कार ही न हुग्रा था, पुर्जों पर लाखों का लेन-देन हो जाता था, न्याय-पद पर बैठे हुए कर्मचारी मक्खियाँ मारा करते थे। सज्जनों, उन दिनों कोई ग्रादमी जवान न मरता था (तालियाँ)। हाँ, उन दिनों कोई ग्रादमी जवान न मरता था, बाप के सामने बेटे का ग्रवसान हो जाना एक ग्रश्रुतपूर्व—एक ग्रसम्भव घटना—थी। ग्राज ऐसे कितने माता-पिता हैं जिनके कलेजे पर जवान बेटों का दाग न हो ? वह भारत नहीं रहा, भारत गारत हो गया !"

यही चौबेजी की शैली थी। वह वर्तमान की ग्रधोगति ग्रौर दुर्दशा तथा भूत की समृद्धि ग्रौर सुदशा का राग ग्रलाप कर लोगों में जातीय स्वाभिमान को जाग्रत कर देते थे। इसी सिद्ध की बदौलत उनकी नेताग्रों में गणना होती थी। विशेषतः हिंदू-सभा के तो वह कर्णधार समझे जाते थे। हिंदू-सभा के उपासकों में कोई ऐसा उत्साही, ऐसा दक्ष, ऐसा नीति-चतुर दूसरा न था। यों कहिए कि सभा के लिए उन्होंने ग्रपना जीवन ही उत्सर्ग कर दिया था। धन तो उनके पास न था, कम-से-कम लोगों का विचार यही था, लेकिन साहस, धैर्य ग्रौर बुद्धि-जैसे ग्रमूल्य रत्न उनके पास ग्रवश्य थे, ग्रौर ये सभा को ग्रर्पण थे।

'शुद्धि' के तो मानो वह प्राण ही थे। हिंदू-जाति का उत्थान ग्रौर पतन, जीवन ग्रौर मरण उनके विचार में इसी प्रश्न पर ग्रवलम्बित था। शुद्धि के सिवा ग्रब हिंदू-जाति के पुनर्जीवन का ग्रौर कोई उपाय न था। जाति की समस्त नैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, ग्रार्थिक,

धार्मिक बीमारियों की दवा इसी आंदोलन की सफलता में मर्याहित थी, और वह तन-मन से इसका उद्योग किया करते थे।

चंदे वसूल करने में चौबेजी सिद्धहस्त थे। ईश्वर ने उन्हें वह 'गुर' बता दिया था कि पत्थर से भी तेल निकाल सकते थे। कँजूसों को तो वह ऐसा उलटे छुरे से मुँडते थे कि उन महाशयों को सदा के लिए शिक्षा मिल जाती थी। इस विषय में पंडितजी साम, दाम, दंड और भेद, चारों नीतियों से काम लेते थे, यहाँ तक कि राष्ट्र-हित के लिए डाका और चोरी को भी क्षम्य समझते थे।

2

गरमी के दिन थे। लीलाधर जी किसी शीतल पार्वत्य-प्रदेश को जाने की तैयारियाँ कर रहे थे कि सैर की सैर हो जायेगी, और बन पड़ा, तो कुछ चंदा भी वसूल कर लाएंगे। उनको जब भ्रमण की इच्छा होती, तो मित्रों के साथ एक डेपुटेशन के रूप में निकल खड़े होते। अगर एक हजार रुपये बसूल करके वह इसका आधा सैर-सपाटे में खर्च भी कर दें, तो किसी की क्या हानि? हिंदू-सभा को तो कुछ-न-कुछ मिल ही जाता था। वह उद्योग न करते, तो इतना भी तो न मिलता! पंडितजी ने अबकी सपरिवार जाने का निश्चय किया था। जब से 'शुद्धि' का आविर्भाव हुआ था, उनकी आर्थिक दशा, जो पहले बहुत शोचनीय रहती थी, बहुत कुछ सँभल गई थी।

लेकिन जाति उपासकों का ऐसा सौभाग्य कहाँ कि शांति-निवास का आनन्द उठा सकें! उनका तो जन्म ही मारे-मारे फिरने के लिए होता है। खबर आयी कि मदरास-प्रांत में तबलीगवालों ने तूफान मचा रखा

है। हिन्दुओं के गाँव के गाँव मुसलमान होते जाते हैं। मुल्लाओं ने बड़े जोश से तबलीग का काम शुरू किया है। अगर हिन्दू-सभा ने इस प्रवाह को रोकने की आयोजना न की, तो सारा प्रांत हिन्दुओ से शून्य हो जायगा—किसी शिखाधारो की सूरत न नजर आएगी।

हिन्दू-सभा में खलबली मच गई। तुरंत एक विशेष अधिवेशन हुआ और नेताओं के सामने यह समस्या उपस्थित की गई। बहुत सोच-विचार के बाद निश्चय हुआ कि चौबेजी पर इस कार्य का भार रखा जाए। उनसे प्रार्थना की जाए कि वह तुरंत मदरास चले जाएँ, और धर्म-विमुख बंधुओ का उद्धार करें। कहने ही की देरी थी। चौबेजी तो हिन्दू-जाति की



मुल्लाओं ने बड़े जोश से तबलीग का काम शुरू किया है।

सेवा के लिए अपने को अर्पण कर ही चुके थे; पर्वत-यात्रा का विचार रोक दिया, और मदरास जाने को तैयार हो गए। हिंदू-सभा के मंत्री ने आँखों में आँसू भरकर उनसे विनय की कि महाराज, यह बीड़ा आप ही उठा सकते हैं। आप ही को परमात्मा ने इतनी सामर्थ्य दी है। आपके सिवा ऐसा कोई दूसरा मनुष्य भारतवर्ष में नहीं हैं, जो इस घोर विपत्ति में काम आए। जाति की दीन-हीन दशा पर दया कीजिए।

चौबेजी इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सके। फौरन सेवकों की एक मंडली बनी, और पंडितजी के नेतृत्व में रवाना हुई। हिंदू-सभा ने उसे बड़ी धूम से विदाई का भोज दिया। एक उदार रईस ने चौबेजी को एक थैली भेंट की और रेल–स्टेशन पर हजारों आदमी उन्हें विदा करने आये।

यात्रा का वृत्तांत लिखने की जरूरत नहीं। हर एक बड़े स्टेशन पर सेवकों का सम्मान-पूर्ण स्वागत हुआ। कई जगह थैलियां मिलीं। रतलाम की रियासत ने एक शामियाना भेंट किया। बड़ौदा ने एक मोटर दी कि सेवकों को पैदल चलने का कष्ट न उठाना पड़े, यहां तक कि मदरास पहुँचते-पहुँचते सेवा-दल के पास एक माकूल रकम के अतिरिक्त जरूरत को कितनी ही चीजें जमा हो गईं। वहाँ आबादी से दूर, एक खुले मैदान में हिंदू–सभा का पड़ाव पड़ा। शामियाने पर राष्ट्रीय झंडा फहराने लगा। सेवको ने अपनी–अपनी वर्दियाँ निकालीं, स्थानीय धन–कुबेरों ने दावत के सामान भेजे, रावटियाँ पड़ गईं। चारों ओर ऐसी चहल–पहल हो गई, मानों किसी राजा का कैम्प है।

रात के आठ बजे थे। अछूतों की एक बस्ती के समीप, सेवक-दल का कैम्प गैस के प्रकाश से जगमगा रहा था। कई हजार आदमियों का जमाव था, जिनमें अधिकाँश अछूत ही थे। उनके लिए अलग टाट बिछा दिये गये थे। ऊँचे वर्ण के हिन्दू कालीनों पर बैठे हुए थे। पंडित लीलाधर का धुआँधार व्याख्यान हो रहा था—तुम उन्हीं ऋषियों की संतान हो, जो आकाश के नीचे एक नई सृष्टि की रचना कर सकते थे,



अछूतों की एक बस्ती के समीप, कई हजार आदमियों का जमाव था, जिनमें अधिकांश अछूत ही थे।

जिनके न्याय, बुद्धि और विचार-शक्ति के सामने आज सारा संसार सिर झुका रहा है—

सहसा एक बूढ़े ने उठकर पूछा—हम लोग भी उन्हीं ऋषियों की संतान हैं ?

लीलाधर—निस्संदेह। तुम्हारी धमनियों में भी उन्हीं ऋषियों का रक्त दौड़ रहा है। और, यद्यपि आज का निर्दयी, कठोर, विचार-हीन, संकुचित हिंदू-समाज तुम्हें अवहेलना की दृष्टि से देख रहा है, तथापि तुम किसी हिंदू से नीच नहीं हो, चाहे वह अपने को कितना ही ऊँचा समझता हो।

बूढ़ा—तुम्हारी सभा हम लोगो की सुध क्यों नहीं लेती ?

लीलाधर—हिंदू सभा का जन्म अभी थोड़े ही दिन हुए हुआ है, और इस अल्पकाल में उसने जितने काम किये हैं, उन पर उसे अभिमान हो सकता है। हिंदू-जाति शताब्दियों के बाद गहरी नींद से चौंकी है। और अब वह समय निकट है, जब भारतवर्ष में कोई हिंदू किसी हिंदू को नीच न समझेगा, जब सब एक दूसरे को भाई समझेंगे। श्री रामचंद्र ने निषाद को छाती से लगाया था, शबरी के जूठे बेर खाए थे....

बूढ़ा—आप जब इन्हीं महात्माओं की संतान हैं, तो फिर ऊँच-नीच में क्यों इतना भेद मानते हैं।

लीलाधर—इसलिए कि हम पतित हो गये हैं—अज्ञान में पड़कर उन महात्माओं को भूल गए हैं।

बूढ़ा—अब तो आपकी निद्रा टूटी है, हमारे साथ भोजन करोगे ?

लीलाधर—मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

बूढ़ा—मेरे लड़के से अपनी कन्या का विवाह कीजिएगा ?

लीलाधर—जब तक तुम्हारे जन्म-संस्कार न बदल जाएँ, जब तक तुम्हारे आहार-व्यवहार में परिवर्तन न हो जाए, हम तुमसे विवाह का सम्बन्ध नहीं कर सकते। मांस खाना छोड़ो, मदिरा पीना छोड़ो, शिक्षा ग्रहण करो, तभी तुम उच्च-वर्ण के हिंदुओं में मिल सकते हो।



बूढ़ा—आप जब इन्हीं महात्माओं की सन्तान हैं तो फिर ऊँच नीच में क्यों इतना भेद मानते हैं ?

बूढ़ा—हम कितने ही ऐसे कुलीन ब्राह्मणों को जानते हैं, जो रात-दिन नशे में डूबे रहते हैं, मांस के बिना कौर नहीं उठाते; और कितने ही ऐसे हैं, जो एक अखर भी नहीं पढ़े हैं, पर आपको उनके साथ भोजन करते देखता हूँ। उनसे विवाह-सम्बन्ध करने में आपको कदाचित इन्कार न होगा। जब आप खुद अज्ञान में पड़े हुए हैं, तो हमारा उद्धार कैसे कर सकते हैं? आपका हृदय अभी तक अभिमान से भरा हुआ है। जाइए अभी कुछ दिन और अपनी आत्मा का सुधार कीजिए। हमारा उद्धार आपके किए न होगा। हिंदू समाज में रह कर हमारे माथे से नीचता का कलँक न मिटेगा। हम कितने ही विद्वान्, कितने ही आचारवान् हो जाएँ, आप हमें यों ही नीच समझते रहेंगे। हिंदुओं की आत्मा मर गई है, और उसका स्थान अहंकार ने ले लिया है। हम अब उस देवता की शरण जा रहे हैं, जिनके मानने वाले हमसे गले मिलने को आज ही तैयार हैं। वे यह नहीं कहते कि तुम अपने संस्कार बदल कर आओ। हम अच्छे हैं या बुरे, वे इसी दशा में हमें अपने पास बुला रहे हैं। आप अगर ऊँचे हैं, तो ऊँचे बने रहिए। हमें उड़ना नहीं आता। हम उन लोगों के साथ रहेंगे, जिनके साथ हमें उड़ना न पड़ेगा।

लीलाधर—एक ऋषि-संतान के मुँह से ऐसी बात सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। वर्ण-भेद तो ऋषियों ही का किया हुआ है। उसे तुम कैसे मिटा सकते हो।

बूढ़ा—ऋषियों को मत बदनाम कीजिए। यह सब पाखंड आप लोगों का रचा हुआ है। आप कहते हैं, तुम मदिरा पीते हो; लेकिन आप मदिरा पीने वालों की जूतियाँ चाहते हैं। आप हमसे मांस खाने के कारण घिनाते हैं, लेकिन आप गौ-माँस खाने वालों के सामने नाक रगड़ते हैं।

इसीलिए न कि वे आपसे बलवान हैं ? हम भी आज राजा हो जाएँ, तो आप हमारे सामने हाथ बाँधे खड़े होंगे। आपके धर्म में वही ऊँचा है, जो बलवान है, वही नीच है, जो निर्बल है। यही आपका धर्म है ?

यह कहकर बूढ़ा वहां से चला गया, और उसके साथ ही और लोग भी उठ खड़े हुए। केवल चौबेजी और उनके दलवाले मंच पर रह गये, मानो गान समाप्त हो जाने के बाद उसकी प्रतिध्वनि वायु में गूँज रही हो।



आपके धर्म में वही नीच है जो निर्बल है! —कह कर बूढ़ा वहां से चला गया। उसके साथ ही और लोग भी उठ खड़े हुए।

तबलीग वालों ने जब से चौबेजी के ग्राने की खबर सुनी थी, इस फिक्र में थे कि किसी उपाय से इन सबको यहाँ से दूर करना चाहिए। चौबेजी का नाम दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। जानते थे, यह यहाँ जम गया, तो हमारी सारी करी-करायी मेहनत व्यर्थ हो जाएगी। इसके कदम यहाँ जमने न पाएँ। मुल्लाग्रों ने उपाय सोचना शुरू किया। बहुत वाद-विवाद, हुज्जत ग्रौर दलील के बाद निश्चय हुग्रा कि इस काफिर को कत्ल कर दिया जाए। ऐसा सबाब लूटने के लिए ग्रादमियों की क्या कमी ? उसके लिए तो जन्नत का दरवाजा खुल जायगा, हूरें उसकी बलाएँ लेंगी, फरिश्ते कदमों की खाक का सुरमा बनाएँगे, रसूल उसके सर पर बरकत का हाथ रखेंगे, खुदावंद करीम उसे सीने से लगाएँगे ग्रौर कहेंगे—तू मेरा प्यारा दोस्त है ! दो हट्टे-कट्टे जवानों ने तुरन्त बीड़ा उठा लिया।

रात के दस बज गए थे। हिन्दू-सभा के कैम्प में सन्नाटा था। केवल चौबेजी ग्रपनी रावटी में बैठे हिन्दू-सभा के मंत्री को पत्र लिख रहे थे—यहाँ सबसे बड़ी ग्रावश्यकता धन की है। रुपया, रुपया, रुपया ! जितना भेज सकें, भेजिए। डेपुटेशन भेज कर वसूल कीजिए, मोटे महाजनों की जेब टटोलिए, भिक्षा माँगिए। बिना धन के इन ग्रभागों का उद्धार न होगा। जब तक कोई पाठशाला न खुले, कोई चिकित्सालय स्थापित न हो, कोई वाचनालय न हो, इन्हें कैसे विश्वास ग्राएगा कि हिंदू-सभा उनकी हितचिंतक है। तबलीगवाले जितना खर्च कर रहे हैं उसका ग्राधा भी मुझे मिल जाय, तो हिंदू धर्म की पताका फहराने लगे। केवल व्याख्यानों से काम न चलेगा। ग्रसीसों से कोई जिंदा नहीं रहता।

सहसा किसी की आहट पाकर वह चौंक पड़े। आँखें ऊपर उठायी तो देखा, दो आदमी सामने खड़े हैं। पंडितजी ने शंकित होकर पूछा—तुम कौन हो, क्या काम है ?

उत्तर मिला—हम इजराईल के फरिश्ते हैं। तुम्हारी रूह कब्ज करने आये हैं। हजरत इजराईल ने तुम्हें याद किया है।

पंडितजी यों तो बहुत ही बलिष्ठ पुरुष थे, उन दोनों को एक धक्के



पंडित जी ने आँखें ऊपर ऊठायी तो देखा—दो आयमी सामने खड़े हैं।

में गिरा सकते थे। प्रातःकाल तीन पाव मोहनभोग और दो सेर दूध का नाश्ता करते थे। दोपहर के समय पाव भर घी दाल में खाते, तीसरे पहर दूधिया भंग छानते जिसमें सेर भर मलाई और आधा सेर बादम मिला रहता। रात को डटकर ब्यालू करते; क्योंकि प्रातःकाल तक फिर कुछ न खाते थे। इस पर तुर्रा यह कि पैदल पग भर भी न चलते थे। पालकी मिले, तो पूछना ही क्या, जैसे घर का पलंग उड़ा जा रहा हो। कुछ न हो तो इक्का तो था ही; यद्यपि काशी में दो-चार इक्केवाले ही ऐसे थे, जो उन्हें देखकर कह न दें कि "इक्का खाली नहीं है।" ऐसा मनुष्य नर्म अखाड़े में पट पड़कर ऊपरवाले पहलवान को थका सकता था, चुस्ती और फुर्ती के अवसर पर तो वह रेत पर निकला हुआ कछुआ था।

पंडितजी ने एक बार कनखियों से दरवाजे की तरफ देखा। भागने का कोई मौका न था। तब उनमें साहस का संचार हुआ। भय की पराकाष्ठा ही साहस है। अपने सोटे की तरफ हाथ बढ़ाया, और गरजकर बोले—निकल जाओ यहाँ से....

बात मुंह से पूरी न निकली थी कि लाठियों का वार पड़ा। पंडितजी मूर्च्छित होकर गिर पड़े। शत्रुओं ने समीप आकर देखा, जीवन का कोई लक्षण न था। समझ गए, काम तमाम हो गया। लूटने का तो विचार न था, पर जब कोई पूछने वाला न हो तो हाथ बढ़ाने में क्या हर्ज ? जो कुछ हाथ लगा; ले-देकर चलते हुए।

5

प्रातःकाल बूढ़ा भी उधर से निकला, तो सन्नाटा छाया हुआ था। न आदमी न आदमजात, छोलदारियाँ भी गायब ! चकराया, यह माजरा

क्या है ? रात ही भर में अलादीन के महल की तरह सब-कुछ गायब हो गया। उन महात्माओं में से एक भी नजर नहीं आता, जो प्रातःकाल मोहनभोग उड़ाते और सन्धया समय भंग घोटते दिखाई देते थे। जरा और समीप जाकर पंडित लीलाधर की रावटी में झाँका, तो कलेजा सन्न हो गया। पंडितजी जमीन पर मुर्दे की तरह पड़े थे। मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। सिर के बालों में रक्त ऐसा जम गया था, जैसे किसी चित्रकार के ब्रश में रंग। सारे कपड़े लहूलुहान हो रहे थे। समझ



बूढ़े ने पंडितजी की रावटी में झांका—पंडितजी जमीन पर
मुर्दे की तरह पड़े हुए थे।

गया, पंडितजी के साथियों ने उन्हें मारकर अपनी राह ली। सहसा पंडित जी के मुँह से कहराने की आवाज निकली। अभी जान बाकी थी। बूढ़ा तुरन्त दौड़ा हुआ गाँव में गया, और कई आदमियों को लाकर पंडितजी को अपने घर उठवा ले गया।

मरहम-पट्टी होने लगी। बूढ़ा दिन-के-दिन और रात-की-रात पंडितजी के पास बैठा रहता। उसके घर वाले उनकी शुश्रूषा में लगे रहते। गाँव वाले भी यथाशक्ति सहायता करते। इस बेचारे का यहाँ कौन अपना बैठा हुआ है? अपने हैं तो हम, बेगाने हैं तो हम। हमारे ही उद्धार के लिए तो बेचारा यहाँ आया था, नहीं तो यहां उसे क्या लेना था? कई बार पंडितजी अपने घर पर बीमार पड़ चुके थे। पर उनके घरवालों ने इतनी तन्मयता से अभी तीमारदारी न की थी। सारा घर, और घर ही नहीं, सारा गाँव उनका गुलाम बना हुआ था। अतिथि-सेवा उनके धर्म का एक अंग थी। सभ्य-स्वार्थ ने अभी उस भाव का गला नहीं घोटा था। साँप का मंत्र जानने वाला देहाती अब भी माघ-पूस की अँधेरी नेघाच्छन्न रात्रि में मंत्र झाड़ने के लिऐ दस-पांच कोस पैदल दौड़ता हुआ चला जाता हैं। उसे डवल फीस और सवारी की जरुरत नहीं होती। बूढ़ा मल-मूत्र तक अपने हाथों उठाकर फेंकता, पंडितजी की घुड़कियाँ सुनना, सारे गाँव से दूध मांगकर उन्हें पिलाता; पर उसकी त्योरियाँ कभी मैली न होती। अगर उसके कहीं चले जाने पर घरवाले लापरवाही करते, तो आकर सबको डाँटता।

महीने भर के बाद पंडितजी चलने-फिरने लगे, और अब उन्हें ज्ञात हुआ कि इन लोगों ने मेरे साथ कितना उपकार किया है। इन्हीं लोगों का काम था कि मुझे मौत के मुँह से निकाला, नहीं तो मरने में क्या

कसर रह गई थी ? उन्हें अनुभव हुआ कि मैं जिन लोगों को नीच समझता था, और जिनके उद्धार का बीड़ा उठाकर आया था, वे मुझसे कहीं ऊँचे हैं। इस परिस्थिति में मैं कदाचित् रोगी को किसी अस्पताल भेजकर ही अपनी कर्तव्यनिष्ठा पर गर्व करता; समझता, मैंने दधीचि और हरिश्चंद्र का मुख उज्ज्वल कर दिया। उनके रोयँ-रोयँ से इन देवतुल्य प्राणियों के प्रति आशीर्वाद निकलने लगा।



बूढ़ा दिन-के-दिन और रात-की-रात पंडितजी की सेवा किया करता था।

तीन महीने गुजर गए। न तो हिंदू-सभा ने पंडितजी की खबर ली, और न घरवालों ने। सभा के मुखपत्र में उनकी मृत्यु पर आँसू बहाए गए, उनके कामों की प्रशंसा की गई और उनका स्मारक बनाने के लिए चंदा खोल दिया गया। घरवाले भी रो-पीटकर बैठे रहे।

उधर पंडितजी दूध और घी खाकर चौक-चौबंद हो गए। चेहरे पर खून की सुर्खी दौड़ गई, देह भर आयी। देहात की जलवायु ने वह काम कर दिखाया, जो कभी मलाई और मक्खन से न हुआ था। पहले की तरह तो वह न हुए, पर फुर्ती और चुस्ती दुगनी हो गई। मोटाई का आलस्य अब नाम को भी न था। उनमें एक नए जीवन का संचार हो गया।

जाड़ा शुरू हो गया था। पंडितजी घर लौटने की तैयारियाँ कर रहे थे। इतने में प्लेग का आक्रमण हुआ और गाँव के तीन आदमी बीमार हो गए। बेचारा बूड़ा चौधरी भी उन्हीं में था। घरवाले इन रोगियों को छोड़कर भाग खड़े हुए। वहाँ का दस्तूर था कि जिन बीमारियों को वे लोग दैवी कोप समझते थे, उनके रोगियों को छोड़कर चले जाते थे। उन्हें बचाना देवताओं से बैर लेना था और देवताओं से बैर करके कहां जाते? जिस प्राणी को देवताओं ने चुन लिया उसे भला वे उनके हाथों से छीनने का साहस कैसे करते? पंडितजी को भी लोगों ने साथ ले जाना चाहा। पँडितजी न गये। उन्होंने गाँव में रह कर रोगियों की रक्षा करने का निश्चय किया। जिस प्राणी ने उन्हें मौत के पंजे से छुड़ाया था, उसे इस दशा में छोड़कर वह कैसे जाते? उपकार ने उनकी आत्मा को जगा दिया था। बूढ़े चौधरी ने तीसरे दिन होश आने पर जब उन्हें अपने पास खड़े

देखा, तो बोला—महाराज, तुम यहाँ क्यों आ गए ? मेरे लिए देवताओं का हुक्म आ गया है। अब मैं किसी तरह नहीं रुक सकता। तुम क्यों अपनी जान जोखिम में डालते हो ? मुझ पर दया करो, चले जाओ।

लेकिन पंडितजी पर कोई असर न हुआ। वह बारी-बारी से तीनों रोगियों के पास जाते; और कभी उनकी गिल्टियां सेंकते, कभी उनको पुराणों की कथाएँ सुनाते। घरों में नाज, बरतन आदि सब ज्यों के त्यों रखे हुए थे। पंडितजी पथ्य बना-बनाकर रोगियों को खिलाते। रात को जब रोगी भी सो जाते, और सारा गाँव भायँ-भायँ करने लगता, तो पंडितजी को भाँति-भांति के भयंकर जंतु दिखाई देते। उनके कलेजे में धड़कन होने लगती। लेकिन वहाँ से टलने का नाम न लेते। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि या तो इन लोगों को बचा ही लूँगा, या इन पर अपने को बलिदान ही कर दूँगा।

जब तीन दिन सेंक-बाँध करने पर भी रोगियों की हालत न सँभली, पंडितजी को बड़ी चिंता हुई। शहर वहाँ से 20 मील पर था। रेल का कहीं पता नहीं, रास्ता बीहड़ और साथी कोई नहीं। इधर यह भय कि अकेले रोगियों की न जाने क्या दशा हो। बेचारे बड़े संकट में पड़े। अंत को चौथे दिन, पहर रात रहे, वह अकेले ही शहर को चल दिए, और दस बजते-बजते वहाँ जा पहुंचे। अस्पताल में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। गँवारों से अस्पताल वाले दवाओं का मनमाना दाम वसूल किया करते थे। पंडितजी को मुफ्त क्यों देने लगे ? डाक्टर के मुन्शी ने कहा—दवा तैयार नहीं है।

पंडितजी ने गिड़गिड़ा कर कहा—सरकार, बड़ी दूर से आया हूँ। कई आदमी बीमार पड़े हैं। दवा न मिलेगी, तो सब मर जाएँगे।



पंडितजी लपक कर डाक्टर के पैरों पर गिर पड़े और बोले—
बड़ा गरीब हूँ सरकार, कोई दवा मिले ।

मुन्शी ने बिगड़ कर कहा—क्यों सिर खाए जाते हो ? कह तो दिया, दवा तैयार नहीं है, और न इतनी जल्द तैयार हो सकती है ।

पंडितजी अत्यंत दीन भाव से बोले—सरकार, ब्रह्मण हूँ, आपके बाल-बच्चों को भगवान् चिरंजीवी करें, दया कीजिए । आपका इकबाल चमकता रहे ।

रिश्वती कर्मचारियों में दया कहाँ ! वे तो रुपये के गुलाम हैं । ज्यों-ज्यों पंडितजी उसकी खुशामद करते थे, वह और भी झल्लाता था ।

अपने जीवन में पंडितजी ने कभी इतनी दीनता प्रकट न की थी। उनके पास इस वक्त एक धेला भी न था। अगर वह जानते कि दवा मिलने में इतनी दिक्कत होगी, तो गाँव वालों से ही कुछ माँग-ताँग कर लाए होते। बेचारे हतबुद्धि से खड़े सोच रहे थे कि अब क्या करना चाहिए? सहसा डाक्टर साहब स्वयं बँगले से निकल आए। पंडितजी लपककर उनके पैरों पर गिर पड़े और करुण स्वर में बोले—दीनबंधु, मेरे घर के तीन आदमी ताऊन में पड़े हुए हैं। बड़ा गरीब हूँ सरकार, कोई दवा मिले।

डाक्टर साहब के पास ऐसे गरीब लोग नित्य आया करते थे। उनके चरणों पर किसी का गिर पड़ना, उनके सामने पड़े हुए आर्त्तनाद करना, उनके लिए कुछ नई बातें न थीं। अगर इस तरह वह दया करने लगते तो दया ही भर को होते, यह ठाट-बाट कहाँ से निभता? मगर दिल के चाहे कितने ही बुरे हों, बातें मीठी-मीठी करते थे; पैर हटाकर बोले–रोगी कहाँ हैं?

पंडित–सरकार, वे तो घर पर हैं। इतनी दूर कैसे लाता?

डाक्टर–रोगी घर हैं, और तुम दवा लेने आया है। कितना मजे का बात है! रोगी को देखे बिना कैसे दवा दे सकता है?

पंडितजी को अपनी भूल मालूम हुई। वास्तव में बिना रोगी को देखे रोग की पहचान कैसे हो सकती है। लेकिन तीन-तीन रोगियों को इतनी दूर लाना आसान न था। अगर गाँव वाले उनकी सहायता करते, तो डोलियों का प्रबन्ध हो सकता था। पर वहाँ तो सब-कुछ अपने बूते पर करना था. गाँववालों से इसमें सहायता मिलने की कोई आशा न थी। [illegible] की कौन कहे, वे तो उनके शत्रु हो रहे थे। उन्हें भय होता था

कि यह दुष्ट देवताओं से बैर बढ़ा कर हम लोगों पर न जाने क्या विपत्ति लाएगा। अगर कोई दूसरा आदमी होता, तो वह उसे कब का मार चुके होते। पंडितजी से उन्हें प्रेम हो गया था, इसलिए छोड़ दिया था।

वह जवाब सुनकर पंडितजी को कुछ बोलने का साहस तो न होता था, पर कलेजा मजबूत करके बोले—सरकार अब कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर—अस्पताल से दवा नहीं मिल सकता। हम अपने पास से दाम लेकर दवा दे सकता है।

पंडित—यह दवा कितने की होगी सरकार ?

डाक्टर साहब ने दवा का दाम 10 रु० बतलाया; और यह भी कहा कि इस दवा से जितना लाभ होगा, उतना अस्पताल की दवा से नहीं हो सकता। बोले—वहाँ पुराना दवाई रखा रहता है। गरीब लोग आता है, दवाई ले जाता है, जिसको जीना होता है, जीता है, जिसे मरना होता है, हमसे कुछ मतलब नहीं। तुमको जो दवा देगा, वह सच्चा दवा होगा।

दस रुपये ! इस समय पंडितजी को दस रुपये दस लाख जान पड़े। इतने रुपये वह एक दिन में भंग-बूटी में उड़ा दिया करते थे। पर इस समय तो धेले-धेले को मोहताज थे। किसी से उधार मिलने की आशा कहाँ। हाँ सम्भव है, भिक्षा माँगने से कुछ मिल जाए। लेकिन इतनी जल्द दस रुपये किसी उपाय से भी न मिल सकते थे। आध घंटे तक वह उसी उधेड़-बुन में खड़े रहे। भिक्षा के सिवा दूसरा कोई उपाय न सूझता था, और भिक्षा उन्होंने कभी मांगी न थी। वह चंदे जमा कर चुके थे, एक-एक बार में हजारों वसूल कर लेते थे, पर वह दूसरी बात थी। धर्म

के रक्षक, जाति के सेवक और दलितो के उद्धारक बनकर चंदा लेने में एक गौरव था, चंदा लेकर वह देने वालों पर एहसान करते थे। पर यहां तो भिखारियों की भांति हाथ फैलाना, गिड़गिड़ाना और फटकारें सहनी पड़ेंगी। कोई कहेगा, इतने मोटे-ताजे तो हो, मेहनत क्यों नहीं करते, तुम्हें भीख मांगते शर्म भी नहीं आती? कोई कहेगा, घास खोद लाओ, मैं उन्हें अच्छी मजदूरी दूंगा। किसी को उनके ब्राह्मण होने का विश्वास न आएगा। अगर यहाँ उनकी रेशमी अचकन और रेशमी साफा होता, केसरिया रंगवाला दुपट्टा ही मिल जाता, तो वह कोई स्वाँग भर लेते। ज्योतिषी वन कर वह किसी धनी सेठ को फाँस सकते थे, और इस फन में वह उस्ताद भी थे। पर यहां वह सामान कहां....कपड़े-लत्ते तो सब लुट चुके थे। विपत्ति में कदाचित् बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। अगर वह मैदान में खड़े होकर कोई मनोहर व्याख्यान दे देते तो शायद उनके दस–पाँच भक्त पैदा हो जाते। लेकिन इस तरफ उनका ध्यान ही न गया। वह सजे हुए पंडाल में, फूलों से सुसज्जित मेज के सामने, मंच पर खड़े होकर अपनी वाणी का चमत्कार दिखला सकते थे। इस दुरवस्था में कौन उनका व्याख्यान सुनेगा? लोग समझेंगे, कोई पागल बक रहा है!

मगर दोपहर ढली जा रही थी, अधिक सोच-विचार का अवकाश न था। यहीं सन्ध्या हो गई, तो रात को लौटना असम्भव हो जायगा। फिर रोगियों की न जाने क्या दशा हो, वह अब इस अनिश्चित दशा में खड़े न रह सके। चाहे जितना तिरस्कार हो, कितना ही अपमान सहना पडे, भिक्षा के सिवा और कोई उपाय न था।

वह बाजार में जा कर एक दुकान के सामने खड़े हो गए। पर कुछ माँगने की हिम्मत न पड़ी।

दुकानदार ने पूछा—क्या लोगे ?

पंडितजी बोले—चावल का क्या भाव है ?

मगर दूसरी दुकान पर पहुँचकर वह ज्यादा सावधान हो गए। सेठजी गद्दी पर बैठे हुए थे। पंडितजी आकर उनके सामने खड़े हो गये, और गीता का एक श्लोक पढ़ सुनाया। उनका शुद्ध उच्चारण और मधुर वाणी सुनकर सेठजी चकित हो गए; पूछा—कहां स्थान है ?

पंडित—काशी से आ रहा हूँ।

यह कहकर पंडितजी ने सेठजी को धर्म के दसों लक्षण बतलाए, और श्लोक की ऐसी अच्छी व्याख्या की कि मुग्ध हो गया। बोला—महाराज, आज चलकर मेरे स्थान को पवित्र कीजिए।

कोई स्वार्थी आदमी होता, तो इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेता, लेकिन पंडितजी को तो लौटने की पड़ी थी। बोले—नहीं सेठजी मुझे अवकाश नहीं है।

सेठ—महाराज, आपको हमारी इतनी खातिर करनी पड़ेगी।

पंडितजी जब किसी तरह ठहरने पर राजी न हुए तो सेठजी ने उदास होकर कहा—फिर हम आपकी क्या सेवा करें ? कुछ आज्ञा दीजिए। आपकी वाणी से तो तृप्ति नहीं हुई। फिर कभी इधर आना हो, तो अवश्य दर्शन दीजिएगा।

पंडित—आपकी इतनी श्रद्धा है, तो अवश्य आऊंगा।

यह कह कर पंडितजी फिर खड़े हुए। संकोच ने फिर उनकी जबान बन्द कर दी। यह आदर-सत्कार इसीलिए तो है कि मैं अपना स्वार्थ भाव छिपाए हुए हूँ। कोई इच्छा प्रकट की और इनकी आँखें बदलीं। सूखा जवाब चाहे न मिले; पर यह श्रद्धा न रहेगी। वह नीचे उतर गये, और सड़क पर एक क्षण के लिये खड़े होकर सोचने लगे– अब कहाँ जाऊँ? उधर जाड़े का दिन किसी विलासी के धन की भाँति भागा चला जाता था। वह अपने ही ऊपर झुँझला रहे थे—जब किसी से मांगूंगा ही नहीं, तो कोई क्यों देने लगा? कोई क्या मेरे मन का हाल जानता है? वे दिन गये, जब धनी लोग ब्राह्मणों की पूजा किया करते थे। वह आशा छोड़ दो कि कोई महाशय आकर तुम्हारे हाथ में रुपये रख देंगे। वह धीरे-धीरे आगे बढ़े।

सहसा सेठजी ने पीछे से पुकारा—पंडितजी, जरा ठहरिए।

पंडितजी ठहर गए। फिर घर चलने के लिए आग्रह करने आता होगा। यह तो न हुआ कि एक दस का नोट लाकर दे देता, मुझे घर ले जाकर न जाने क्या करेगा!

मगर जब सेठजी ने सचमुच एक गिनी निकालकर उनके पैरों पर रख दी, तो उनकी आँखों में एहसान के आँसू छलक आए। अब भी सच्चे धर्मात्मा जीव संसार में हैं, नहीं तो पृथ्वी रसातल में न चली जाती! अगर इस वक्त उन्हें सेठजी के कल्याण के लिए अपनी देह का सेर-आधा सेर रक्त भी देना पड़ता, तो शौक से दे देते। गद्गद् कंठ से बोले—इसका तो कुछ काम न था, सेठजी! मैं भिक्षुक नहीं हूँ, आपका सेवक हूँ।

सेठजी श्रद्धा-विनय-पूर्ण शब्दों में बोले—भगवान् इसे स्वीकार कीजिए। यह दान नहीं, भेंट है। मैं भी आदमी पहचानता हूँ। बहुतेरे साधु-संत, योगी-यती, देश और धर्म के सेवक आते रहते हैं; पर न जाने क्यों किसी के प्रति मेरे मन में श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। उनसे किसी तरह पिंड छुड़ाने की पड़ जाती है। आपका संकोच देखकर मैं समझ गया कि आपका यह पेशा नहीं है। आप विद्वान् हैं, धर्मात्मा हैं; पर किसी संकट में पड़े हुए हैं। इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कीजिए और मुझे आशीर्वाद दीजिए।

7

पंडितजी दवाएँ लेकर घर चले, तो हर्ष, उल्लास और विजय से उनका हृदय उछल पड़ता था। हनुमान भी संजीवनी बूटी लाकर इतने प्रसन्न न हुए होंगे। ऐसा सच्चा आनन्द उन्हें कभी प्राप्त न हुआ था। उनके हृदय में इतने पवित्र भावों का संचार कभी न हुआ था।

दिन बहुत थोड़ा रह गया था। सूर्यदेव अविरल गति से पश्चिम की ओर दौड़ते चले जाते थे! क्या उन्हें भी किसी रोगी को दवा देनी थी? वह बड़े वेग से दौड़ते हुए पर्वत की ओट में छिप गए। पंडितजी और फुर्ती से पाँव बढ़ाने लगे, मानों उन्होंने सूर्यदेव को पकड़ लेने की ठानी हो।

देखते-देखते अँधेरा छा गया। आकाश में दो-एक तारे दिखाई देने लगे। अभी दस मील की मंजिल बाकी थी। जिस तरह काली घटा को सिर पर मँडलाते देखकर गृहिणी दौड़-दौड़ कर सुखावन समेटने लगती है, उसी भांति लीलाधर ने दौड़ना शुरू किया। उन्हें अकेले पड़ जाने का भय न था, भय था अँधेरे में राह भूल जाने का। दाहिने-बाएँ बस्तिया छूटती

जाती थीं। पंडितजी को ये गाँव इस समय बहुत सुहावने मालूम होते थे। जितने आनन्द से लोग अलाव के सामने बैठे ताप रहे हैं।

सहसा उन्हें एक कुत्ता दिखाई दिया। जाने किधर से आकर वह उनके सामने पगडंडी पर चलने लगा। पंडितजी चौंक पड़े, पर एक क्षण में उन्होंने कुत्ते को पहचान लिया। वह बूढ़े चौधरी का कुत्ता मोती था। वह गांव छोड़कर आज इधर इतनी दूर कैसे आ निकला? क्या वह जानता



पंडितजी ने एक क्षण में कुत्ते को पहचान लिया। वह बूढ़े चौधरी का कुत्ता मोती था।

था कि पंडितजी दवा लेकर आ रहे होंगे, कहीं रास्ता न भूल जायँ ? कौन जानता है ? पंडितजी ने एक बार 'मोती' कहकर पुकारा. तो कुत्ते ने दुम हिलायी; पर रुका नहीं। वह इससे अधिक परिचय देकर समय नष्ट न करना चाहता था। पंडितजी को ज्ञान हुआ कि ईश्वर मेरे साथ हैं, वह मेरी रक्षा कर रहे हैं। अब उन्हें कुशल से घर पहुँचने का विश्वास हो गया।

दस बजते-बचते पंडितजी घर पहुँच गए।

× × ×

रोग घातक न था; पर यश पंडितजी को बदा था। एक सप्ताह में तीनों चंगे हो गए। पंडितजी की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। उन्होंने यमदेवता से घोर संग्राम करके इन आदमियों को बचा लिया था। उन्होंने देवताओं पर भी विजय पा ली थी––असम्भव को सम्भव कर दिखाया था। वह साक्षात् भगवान थे। उनके दर्शनों के लिए लोग दूर-दूर से आने लगे। किन्तु पंडिजी को अपनी कीर्ति से इतना आनन्द न होता था, जितना रोगियों को चलते-फिरते देखकर।

चौधरी ने कहा––महाराज, तुम साक्षात् भगवान हो। तुम न आ जाते तो हम न बचते ।

पंडितजी बोले––मैंने कुछ नहीं किया। वह सब ईश्वर की दया है।

चौधरी—अब हम तुम्हें कभी न जाने देंगे। जाकर अपने बाल-बच्चों को ले आओ ।

पंडित—हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ। तुमको छोड़कर अब नहीं जा सकता।

8

मुल्लाओं ने मैदान खाली पाकर आस-पास के देहातों में खूब जोर बांध रखा था। गांव के मुसलमान होते जाते थे। उधर हिन्दू-सभा ने सन्नाटा खींच लिया था। किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि इधर आये। लोग दूर बैठे हुए मुसलमानों पर गोला-बारूद चला रहे थे। इस हत्या का बदला कैसे लिया जाय, यही उनके सामने सबसे बड़ी समस्या थी। अधिकारियों के पास बार-बार प्रार्थना-पत्र भेजे जा रहे थे कि इस मामले की छान-बीन की जाए, यही जवाब मिलता था कि हत्याकारियों का पता नहीं चलता। इधर पंडितजी के स्मारक के लिए चंदा भी जमा किया जा रहा था।

मगर इस नयी ज्योति ने मुल्लाओं का रंग फीका कर दिया। यहा एक ऐसे देवता का अवतार हुआ था, जो मुर्दों को जिला देता था, जो अपने भक्तों के कल्याण के लिए अपने प्राणों को बलिदान कर सकता था। मुल्लाओं के यहां यह विभूति कहां, यह चमत्कार कहां ? इस ज्वलंत उपकार के सामने जन्नत और अखूवत (भ्रातृभाव) की कोरी दलीलें कब ठहर सकती थीं ? पंडितजी अब वह अपने ब्राह्मणत्व पर घमंड करने वाले पंडितजी न थे। उन्होंने शूद्रों और भीलों का आदर करना सीख लिया था। उन्हें छाती से लगाते हुए अब पंडितजी को घृणा न होती थी। अपना घर अँधेरा पाकर ही ये इसलामी दीपक की ओर झुके थे। जब अपने घर में सूर्य का प्रकाश हो गया, तो इन्हें दूसरों के यहां जाने की क्या जरूरत थी ? सनातन धर्म की विजय हो गई। गाव-गांव में मंदिर



मुन्शी प्रेमचंद का सचित्र किशोर साहित्य

स्वामी विवेकानन्द
महाराणा प्रताप
अकबर महान
पंच परमेश्वर
शराब की दुकान
ईदगाह
बड़े घर की बेटी
नमक का दरोगा
गुल्ली डण्डा
दो बैलों की कथा
ठाकुर का कुआ
बूढ़ी काकी
सुजान भगत
ममता
मन्दिर
पूस की रात
चमत्कार

मृतक भोज
सत्याग्रह
दूध का दाम
मुक्ति मार्ग
शंखनाद
सद्गति
घरजमाई
मर्यादा की वेदी
दो भाई
मंत्र
राजा हरदौल
राजा मानसिंह
गोपालकृष्ण गोखले
माँ
शान्ति
क्षमा

शतरंज के खिलाड़ी
बलिदान की बेदी
पछतावा
खुदाई फौजदार
रानी सारन्धा
कजाकी
महातीर्थ
बालक
बड़े भाई साहब
समरयात्रा
न्याय
स्वामिनी
झाँकी
जंगल की कहानियाँ
नशा
स्मृति का पुजारी

